

Chapter छह

ब्रह्मा द्वारा शिवजी को मनाना

मैत्रेय उवाच

अथ देवगणाः सर्वे रुद्रानीकैः पराजिताः ।

शूलपट्टिशनिस्त्रिशगदापरिघमुद्गरैः ॥ १ ॥

सञ्छिन्नभिन्नसर्वाङ्गाः सर्त्विक्सभ्या भयाकुलाः ।

स्वयम्भुवे नमस्कृत्य कात्स्न्येनैतत्र्यवेदयन् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; अथ—इसके पश्चात्; देव-गणाः—देवता; सर्वे—समस्त; रुद्र-अनीकैः—शिव के सैनिकों से; पराजिताः—हार कर; शूल—त्रिशूल; पट्टिश—तेजधार का भाला; निस्त्रिश—तलवार; गदा—गदा; परिघ—लोहे की साँग, परिघ; मुद्गरैः—मुद्गर से; सञ्छिन्न-भिन्न-सर्व-अङ्गाः—अंग-प्रत्यंग घायल; स-ऋत्विक्-सभ्याः—समस्त पुरोहित तथा यज्ञ-सभा के सदस्यों सहित; भय-आकुलाः—अत्यधिक भय से; स्वयम्भुवे—भगवान् ब्रह्मा को; नमस्कृत्य—नमस्कार करके; कात्स्न्येन—विस्तार में; एतत्—दक्ष के यज्ञ की घटना; त्र्यवेदयन्—विस्तार से निवेदन किया, सूचित किया।

जब समस्त पुरोहित तथा यज्ञ-सभा के सभी सदस्य और देवतागण शिवजी के सैनिकों द्वारा पराजित कर दिये गये और त्रिशूल तथा तलवार जैसे हथियारों से घायल कर दिये गये, तब वे डरते हुए ब्रह्माजी के पास पहुँचे। उनको नमस्कार करने के पश्चात्, जो हुआ था, उन्होंने विस्तार से उसके विषय में बोलना प्रारम्भ किया।

उपलभ्य पुरैवैतद्भगवानब्जसम्भवः ।

नारायणश्च विश्वात्मा न कस्याध्वरमीयतुः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

उपलभ्य—जानकर; पुरा—पहले से; एव—निश्चय ही; एतत्—दक्ष के यज्ञ की ये सभी घटनाएँ; भगवान्—समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी; अब्ज-सम्भवः—कमल से उत्पन्न (ब्रह्मा); नारायणः—नारायण; च—तथा; विश्व-आत्मा—सम्पूर्ण विश्व के परमात्मा; न—नहीं; कस्य—दक्ष के; अध्वरम्—यज्ञ में; ईयतुः—गये।

ब्रह्मा तथा विष्णु दोनों ही पहले से जान गये थे कि दक्ष के यज्ञ-स्थल में ऐसी घटनाएँ होंगी, अतः पहले से पूर्वानुमान हो जाने से वे उस यज्ञ में नहीं गये।

तात्पर्य : जैसाकि भगवद्गीता (७.२६) में कहा गया है वेदाहं समतीतानि वर्त्मानानि चार्जुन—भगवान् कहते हैं, “जो कुछ भूतकाल में घटित हो चुका है और भविष्य में जो कुछ होने जा रहा है, मैं वह सब जानता हूँ।” भगवान् विष्णु सर्वज्ञ हैं, अतः वे जानते थे कि दक्ष की यज्ञशाला में क्या होगा। इसी कारण से न तो नारायण और न ही ब्रह्माजी दक्ष के महान् यज्ञ में सम्मिलित हुए।

तदाकर्ण्य विभुः प्राह तेजीयसि कृतागसि ।
क्षेमाय तत्र सा भूयान्न प्रायेण बुभूषताम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

तत्—देवों तथा अन्यो द्वारा वर्णित घटनाएँ; आकर्ण्य—सुनकर; विभुः—ब्रह्मा ने; प्राह—उत्तर दिया; तेजीयसि—महापुरुष; कृत-आगसि—अपराध किया गया; क्षेमाय—अपनी कुशलता के लिए; तत्र—उस प्रकार; सा—वह; भूयात् न—अच्छा नहीं है; प्रायेण—सामान्यतः; बुभूषताम्—रहने की इच्छा।

जब ब्रह्मा ने देवताओं तथा यज्ञ में सम्मिलित होने वाले सदस्यों से सब कुछ सुन लिया तो उन्होंने उत्तर दिया; यदि तुम किसी महापुरुष की निन्दा करके उसके चरणकमलों की अवमानना करते हो तो यज्ञ करके तुम कभी सुखी नहीं रह सकते। तुम्हें इस तरह से सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।

तात्पर्य : ब्रह्मा ने देवताओं को बताया कि यद्यपि दक्ष सकाम यज्ञ-कर्मों के फल भोगना चाहता था, किन्तु जब कोई शिव जैसे महान् पुरुष का अपमान करता है, तो वह उसे भोग नहीं सकता। यह तो दक्ष के लिए अच्छा हुआ कि वह युद्ध में मारा गया, क्योंकि यदि वह जीवित रहता तो वह बारम्बार महापुरुषों के चरणकमलों को अपमानित करता। मनु के नियम के अनुसार यदि कोई व्यक्ति हत्या करता है, तो दण्ड उसके हित में होता है, क्योंकि यदि ऐसा न हो तो वह बारम्बार हत्याएँ करके भविष्य में अपने अनेक जन्मों तक बंधन में पड़ता रहेगा। फलतः हत्यारे को राजदण्ड उचित होता है। जो अत्यधिक पापी हैं, यदि वे भगवान् की कृपा से मार डाले जाते हैं, तो यह उनके लिए अच्छा होता है। दूसरे शब्दों में, ब्रह्माजी ने देवताओं को बताया कि दक्ष का मारा जाना अच्छा ही रहा।

अथापि यूयं कृतकिल्बिषा भवं
ये बर्हिषो भागभाजं परादुः ।
प्रसादयध्वं परिशुद्धचेतसा
क्षिप्रप्रसादं प्रगृहीताङ्घ्रिपद्मम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

अथ अपि—फिर भी; यूयम्—तुम सबों ने; कृत-किल्बिषाः—पाप करके; भवम्—शिव को; ये—तुम सभी; बर्हिषः—यज्ञ का; भाग-भाजम्—प्राप्य भाग; परादुः—से अलग कर दिया है; प्रसादयध्वम्—तुम सभी प्रसन्न होओ; परिशुद्ध-चेतसा—बिना किसी हिचक के; क्षिप्र-प्रसादम्—तुरन्त दया; प्रगृहीत-अङ्घ्रि-पद्मम्—चरणकमलों की शरण ग्रहण करके।

तुम लोगों ने शिव को प्राप्य यज्ञ-भाग ग्रहण करने से वंचित किया है, अतः तुम सभी उनके

चरणकमलों के प्रति अपराधी हो। फिर भी, यदि तुम बिना किसी हिचक के उनके पास जाओ और उनको आत्मसमर्पण करके उनके चरणकमलों में गिरो तो वे अत्यन्त प्रसन्न होंगे।

तात्पर्य : शिव को आशुतोष भी कहा जाता है। आशु का अर्थ है “बड़ी जल्दी” तथा तोष का अर्थ है “प्रसन्न होना।” देवताओं को सलाह दी गई कि वे शिव के पास जाकर क्षमा माँगें और चूँकि शिव शीघ्र ही प्रसन्न हो जाने वाले हैं, अतः उनका काम अवश्य बन जाएगा। ब्रह्माजी शिव के मन की बात अच्छी तरह जानते थे और उन्हें विश्वास था कि उनके चरणकमलों के अपराधी देवता वहाँ जाकर बिना हिचक के आत्मसमर्पण करने पर अपने पापों से मुक्त हो सकेंगे।

आशासाना जीवितमध्वरस्य

लोकः सपालः कुपिते न यस्मिन् ।

तमाशु देवं प्रियया विहीनं

क्षमापयध्वं हृदि विद्धं दुरुक्तैः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

आशासाना:—पूछने के इच्छुक; जीवितम्—अवधि तक; अध्वरस्य—यज्ञ की; लोकः—समस्त लोक; स-पालः—अपने नियामकों सहित; कुपिते—क्रुद्ध होने पर; न—नहीं; यस्मिन्—जिसको; तम्—वह; आशु—तुरन्त; देवम्—शिव से; प्रियया—अपनी प्रिया से; विहीनम्—रहित; क्षमापयध्वम्—क्षमा माँगो; हृदि—उसके हृदय में; विद्धम्—अत्यन्त दुखी; दुरुक्तैः—कटु वचनों से।

ब्रह्मा ने उन्हें यह भी बतलाया कि शिवजी इतने शक्तिमान हैं कि उनके क्रोध से समस्त लोक तथा इनके प्रमुख लोकपाल तुरन्त ही विनष्ट हो सकते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि विशेषकर हाल ही में अपनी प्रियतमा के निधन के कारण वे बहुत ही दुखी हैं और दक्ष के कटुवचनों से अत्यन्त मर्माहत हैं। ऐसी स्थिति में ब्रह्मा ने उन्हें सुझाया कि उनके लिए कल्याणप्रद यह होगा कि वे तुरन्त उनके पास जाकर उनसे क्षमा माँगें।

नाहं न यज्ञो न च यूयमन्ये

ये देहभाजो मुनयश्च तत्त्वम् ।

विदुः प्रमाणं बलवीर्ययोर्वा

यस्यात्मतन्त्रस्य क उपायं विधित्सेत् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अहम्—मैं; न—न तो; यज्ञः—इन्द्र; न—न तो; च—तथा; यूयम्—तुम सभी; अन्ये—दूसरे; ये—जो; देह-भाजः—देहधारी; मुनयः—मुनि; च—तथा; तत्त्वम्—सच्चाई; विदुः—जानते हैं; प्रमाणम्—विस्तार; बल-वीर्ययोः—बल तथा वीर्य;

वा—अथवा; यस्य—शिव का; आत्म-तन्त्रस्य—आत्मनिर्भर शिव का; कः—क्या; उपायम्—साधन; विधिस्तेत्—निकालना चाहेगा।

ब्रह्मा ने कहा कि न तो वे स्वयं, न इन्द्र, न यज्ञस्थल में समवेत समस्त सदस्य ही अथवा सभी मुनिगण ही जान सकते हैं कि शिव कितने शक्तिमान हैं। ऐसी अवस्था में ऐसा कौन होगा जो उनके चरणकमलों पर पाप करने का दुस्साहस करेगा ?

तात्पर्य : जब ब्रह्मा ने देवताओं को शिव के पास जाकर क्षमा माँगने की सलाह दे दी तो यह सुझाव दिया गया कि आखिर उनके सामने कैसे यह मामला रखा जाये जाय और कैसे उन्हें प्रसन्न किया जाये ? ब्रह्मा ने यह भी बताया कि कोई भी बद्धजीव, यहाँ तक कि वे स्वयं तथा समस्त देवतागण भी शिव को प्रसन्न करने की विधि नहीं जानते। किन्तु उन्होंने कहा, “यह ज्ञात है कि वे तुरन्त प्रसन्न किए जा सकते हैं, अतः हमें चाहिए कि हम उनके चरणकमलों में गिरकर उन्हें प्रसन्न करने का प्रयास करें।”

वास्तव में अधीनस्थ को सदैव परमेश्वर की शरण में जाना चाहिए। यही *भगवद्गीता* की शिक्षा है। भगवान् प्रत्येक व्यक्ति को सभी प्रकार के आडम्बरयुक्त पदों को त्यागने और उनकी शरण में आने के लिए कहते हैं। इससे बद्धजीव समस्त पाप-बन्धनों से बच जाते हैं। इसी प्रकार, यहाँ पर ब्रह्मा ने सुझाव दिया कि वे शिवजी के पास जाकर उनके चरणकमलों की शरण ग्रहण करें, क्योंकि उनके अत्यन्त दयालु होने तथा सरलता से प्रसन्न होने के कारण काम बन जाएगा।

स इत्थमादिश्य सुरानजस्तु तैः

समन्वितः पितृभिः सप्रजेशैः ।

ययौ स्वधिष्ण्यान्निलयं पुरद्विषः

कैलासमद्रिप्रवरं प्रियं प्रभोः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (ब्रह्मा); इत्थम्—इस प्रकार; आदिश्य—शिक्षा देकर; सुरान्—देवों को; अजः—ब्रह्मा; तु—तब; तैः—उनके; समन्वितः—सहित; पितृभिः—पितरों; स-प्रजेशैः—जीवात्माओं के स्वामियों सहित; ययौ—चले गये; स्व-धिष्ण्यात्—अपने स्थान से; निलयम्—धाम; पुर-द्विषः—शिव का; कैलासम्—कैलास; अद्रि-प्रवरम्—पर्वतों में श्रेष्ठ; प्रियम्—प्रिय; प्रभोः—प्रभु (शिव) का।

इस प्रकार समस्त देवताओं, पितरों तथा जीवात्माओं के अधिपतियों को उपदेश देकर ब्रह्मा ने उन सबों को अपने साथ ले लिया और शिव के धाम पर्वतों में श्रेष्ठ कैलास पर्वत के लिए

प्रस्थान किया ।

तात्पर्य : यहाँ से आगे के चौदह श्लोकों में शिव के धाम, कैलास का वर्णन किया गया है ।

जन्मौषधितपोमन्त्रयोगसिद्धैर्नरैः ।

जुष्टं किन्नरगन्धर्वैरप्सरोभिर्वृतं सदा ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

जन्म—जन्म; औषधि—जड़ी-बूटियाँ; तपः—तपस्या; मन्त्र—वैदिक मंत्र; योग—योग-अभ्यास; सिद्धैः—सिद्ध पुरुषों द्वारा; नर-इतरैः—देवताओं द्वारा; जुष्टम्—भोगा गया; किन्नर-गन्धर्वैः—किन्नरों तथा गन्धर्वों द्वारा; अप्सरोभिः—अप्सराओं द्वारा; वृतम्—पूर्ण; सदा—सदैव ।

कैलास नामक धाम विभिन्न जड़ी-बूटियों तथा वनस्पतियों से भरा हुआ है और वैदिक मंत्रों तथा योग-अभ्यास द्वारा पवित्र हो गया है। इस प्रकार इस धाम के वासी जन्म से ही देवता हैं और समस्त योगशक्तियों से युक्त हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ पर अन्य मनुष्य हैं, जो किन्नर तथा गन्धर्व कहलाते हैं और वे अपनी-अपनी सुन्दर स्त्रियों के संग रहते हैं, जो अप्सराएँ कहलाती हैं।

नानामणिमयैः शृङ्गैर्नानाधातुविचित्रितैः ।

नानाद्रुमलतागुल्मैर्नानामृगगणावृतैः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

नाना—विभिन्न प्रकार के; मणि—रत्न; मयैः—से निर्मित; शृङ्गैः—चोटियों से; नाना-धातु-विचित्रितैः—अनेक धातुओं से अलंकृत; नाना—विभिन्न; द्रुम—वृक्ष; लता—बेलें, लताएँ; गुल्मैः—वृक्ष; नाना—विविध; मृग-गण—हिरनों के समूहों द्वारा; आवृतैः—आबाद ।

कैलास समस्त प्रकार की बहुमूल्य मणियों तथा खनिजों (धातुओं) से युक्त पर्वतों से भरा हुआ है और सभी प्रकार के मूल्यवान वृक्षों तथा पौधों द्वारा घिरा हुआ है। पर्वतों की चोटियाँ तरह-तरह के हिरनों से शोभायमान हैं।

नानामलप्रस्रवणैर्नानाकन्दरसानुभिः ।

रमणं विहरन्तीनां रमणैः सिद्धयोषिताम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

नाना—विविध; अमल—निर्मल, पारदर्शी; प्रस्रवणैः—जल प्रपातों से; नाना—विविध; कन्दर—गुफाएँ; सानुभिः—चोटियों से; रमणम्—आनन्द प्रदान करती हुई; विहरन्तीनाम्—विहार करती हुई; रमणैः—अपने-अपने प्रेमियों सहित; सिद्ध-योषिताम्—योगियों की प्रियतमाओं के ।

वहाँ अनेक झरने हैं और पर्वतों में अनेक गुफाएँ हैं जिनमें योगियों की अत्यन्त सुन्दर पत्नियाँ

रहती हैं।

मयूरकेकाभिरुतं मदान्धालिविमूर्च्छितम् ।

प्लावितै रक्तकण्ठानां कूजितैश्च पतत्रिणाम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

मयूर—मोरों की; केका—बोली (शोर); अभिरुतम्—गुंजायमान; मद—मादकता से; अन्ध—अंधे हुए; अलि—भौरों से; विमूर्च्छितम्—गुंजायमान; प्लावितैः—गायन से; रक्त-कण्ठानाम्—कोयलों के; कूजितैः—कूजन (कलरव) से; च—तथा; पतत्रिणाम्—अन्य पक्षियों के।

कैलास पर्वत पर सदैव मोरों की मधुर ध्वनि तथा भौरों के गुंजार की ध्वनि गूँजती रहती है।

कोयलें सदैव कूजती रहती हैं और अन्य पक्षी परस्पर कलरव करते रहते हैं।

आह्वयन्तमिवोद्धस्तैर्द्विजान्कामदुघैर्दुमैः ।

व्रजन्तमिव मातङ्गैर्गृणन्तमिव निझरैः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

आह्वयन्तम्—बुलाते हुए; इव—मानो; उत्-हस्तैः—उठे हुए हाथों (डालियों) से; द्विजान्—पक्षियों को; काम-दुघैः—कामप्रद, मनोरथ पूरा करने वाले; दुमैः—वृक्षों से; व्रजन्तम्—चलते हुए; इव—मानों; मातङ्गैः—हाथियों द्वारा; गृणन्तम्—चिगघाड़ करते; इव—मानो; निझरैः—झरनों के द्वारा।

वहाँ पर सीधी शाखाओं वाले ऊँचे-ऊँचे वृक्ष हैं, जो मधुर पक्षियों को बुलाते प्रतीत होते हैं और जब हाथियों के झुंड पर्वतों के पास से गुजरते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है मानो कैलास पर्वत उनके साथ-साथ चल रहा है। जब झरनों की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है, तो ऐसा प्रतीत होता है मानो कैलास पर्वत भी सुर में सुर मिला रहा हो।

मन्दारैः पारिजातैश्च सरलैश्चोपशोभितम् ।

तमालैः शालतालैश्च कोविदारसनार्जुनैः ॥ १४ ॥

चूतैः कदम्बैर्नीपैश्च नागपुन्नागचम्पकैः ।

पाटलाशोकबकुलैः कुन्दैः कुरबकैरपि ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

मन्दारैः—मन्दार से; पारिजातैः—पारिजात से; च—तथा; सरलैः—सरल से; च—तथा; उपशोभितम्—अलंकृत; तमालैः—तमाल वृक्षों से; शाल-तालैः—शाल तथा ताड़ वृक्षों से; च—तथा; कोविदार-आसन-अर्जुनैः—कोविदार, आसन (विजयसार) तथा अर्जुन वृक्षों से; चूतैः—आम का एक प्रकार; कदम्बैः—कदम्ब वृक्षों से; नीपैः—नीपों से (धूलि कदम्बों से); च—तथा; नाग-पुन्नाग-चम्पकैः—नाग, पुन्नाग तथा चम्पक से; पाटल-अशोक-बकुलैः—पाटल, अशोक तथा बकुल से; कुन्दैः—कुन्द से; कुरबकैः—कुरबक से; अपि—भी।

पूरा कैलास पर्वत अनेक प्रकार के वृक्षों से सुशोभित है, जिनमें से उल्लेखनीय नाम हैं—

मन्दार, पारिजात, सरल, तमाल, ताल, कोविदार, आसन, अर्जुन, आम्र-जाति, कदम्ब, धूलि-कदम्ब, नाग, पुन्नाग, चम्पक, पाटल, अशोक, बकुल, कुंद तथा कुरबक। सारा पर्वत ऐसे वृक्षों से सुसज्जित है जिनमें सुगन्धित पुष्प निकलते हैं।

स्वर्णार्णशतपत्रैश्च वररेणुकजातिभिः ।

कुब्जकैर्मल्लिकाभिश्च माधवीभिश्च मण्डितम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

स्वर्णार्ण—सुनहरे रंग का; शत-पत्रैः—कमलों से; च—तथा; वर-रेणुक-जातिभिः—वर, रेणुक तथा मालती से; कुब्जकैः—कुब्जकों से; मल्लिकाभिः—मल्लिकाओं से; च—तथा; माधवीभिः—माधवी से; च—तथा; मण्डितम्—सुशोभित, अलंकृत।

वहाँ अन्य वृक्ष भी हैं, जो पर्वत की शोभा बढ़ाते हैं, यथा सुनहरा कमलपुष्प, दारचीनी,

मालती, कुब्ज, मल्लिका तथा माधवी।

पनसोदुम्बराश्रत्थप्लक्षन्यग्रोधहिङ्गुभिः ।

भूर्जैरोषधिभिः पूगै राजपूगैश्च जम्बुभिः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

पनस-उदुम्बर-अश्रत्थ-प्लक्ष-न्यग्रोध-हिङ्गुभिः—पनस (कटहल), उदुम्बर, अश्रत्थ, प्लक्ष, न्यग्रोध तथा हींग उत्पन्न करने वाले वृक्ष; भूर्जैः—भोजपत्र से; ओषधिभिः—सुपारी वृक्षों से; पूगैः—पूग से; राजपूगैः—राजपूगों से; च—तथा; जम्बुभिः—जामुन से।

कैलास पर्वत जिन अन्य वृक्षों से सुशोभित है वे हैं कट अर्थात् कटहल, गूलर, बरगद, पाकड़, न्यग्रोध तथा हींग उत्पादक वृक्ष। इसके अतिरिक्त सुपारी, भोजपत्र, राजपूग, जामुन तथा इसी प्रकार के अन्य वृक्ष हैं।

खर्जूराग्रातकाग्राद्यैः प्रियालमधुकेङ्गुदैः ।

द्रुमजातिभिरन्यैश्च राजितं वेणुकीचकैः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

खर्जूर-आग्रातक-आम्र-आद्यैः—खर्जूर, आग्रातक, आम्र तथा अन्य वृक्षों से; प्रियाल-मधुक-इङ्गुदैः—प्रियाल, मधुक तथा इंगुद से; द्रुम-जातिभिः—वृक्षों की जातियों से; अन्यैः—अन्य; च—तथा; राजितम्—सुशोभित; वेणु-कीचकैः—वेणु (बाँस) तथा कीचक (खोखले बाँस) से।

वहाँ आम, प्रियाल, मधुक (महुआ) तथा इंगुद (च्यूर) के वृक्ष हैं। इनके अतिरिक्त पतले बाँस, कीचक तथा बाँसों की अन्य किस्में कैलास पर्वत को सुशोभित करने वाली हैं।

कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रवनर्द्धिभिः ।
 नलिनीषु कलं कूजत्खगवृन्दोपशोभितम् ॥ १९ ॥
 मृगैः शाखामृगैः क्रोडैर्मृगेन्द्रैरक्षशल्यकैः ।
 गवयैः शरभैर्व्याघ्रै रुरुभिर्महिषादिभिः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

कुमुद—कुमुद; उत्पल—उत्पल; कह्लार—कह्लार; शतपत्र—कमल; वन—जंगल; ऋद्धिभिः—से आच्छादित; नलिनीषु—
 झीलों में; कलम्—अत्यन्त मधुर; कूजत्—चहकते हुए; खग—पक्षियों का; वृन्द—समूह; उपशोभितम्—से अलंकृत; मृगैः—
 हिरनों से; शाखा-मृगैः—बन्दरों से; क्रोडैः—सुअरों से; मृग-इन्द्रैः—सिंहों से; ऋक्ष-शल्यकैः—रीछों तथा साहियों से;
 गवयैः—नील गायों से; शरभैः—जंगली गधों से; व्याघ्रैः—बाघों से; रुरुभिः—एक प्रकार के छोटे मृग से; महिष-आदिभिः—
 भैंसे आदि से।

वहाँ कई प्रकार के कमल पुष्प हैं यथा कुमुद, उत्पल, शतपत्र। वहाँ का वन अलंकृत उद्यान
 सा प्रतीत होता है और छोटी-छोटी झीलों विभिन्न प्रकार के पक्षियों से भरी पड़ी हैं, जो अत्यन्त
 मीठे स्वर से चहकती हैं। साथ ही कई प्रकार के अन्य पशु भी पाये जाते हैं, यथा मृग, बन्दर,
 सुअर, सिंह, रीछ, साही, नील गाय, जंगली गधे, लघुमृग, भैंसे इत्यादि जो अपने जीवन का पूरा
 आनन्द उठाते हैं।

कर्णान्त्रैकपदाश्वास्यैर्निर्जुष्टं वृकनाभिभिः ।
 कदलीखण्डसंरुद्धनलिनीपुलिनश्रियम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

कर्णान्त्र—कर्णात्र से; एकपद—एकपद; अश्वास्यैः—अश्वास्य से; निर्जुष्टम्—पूर्णतः भोगा हुआ; वृक-नाभिभिः—वृक तथा
 नाभि (कस्तूरी मृग) द्वारा; कदली—केला के; खण्ड—समूह से; संरुद्ध—आच्छादित; नलिनी—कमलों से भरा सरोवर;
 पुलिन—रेतीला किनारा; श्रियम्—अत्यन्त सुन्दर।

वहाँ पर तरह तरह के मृग पाये जाते हैं, यथा कर्णात्र, एकपद, अश्वास्य, वृक तथा कस्तूरी
 मृग। इन मृगों के अतिरिक्त विविध केले के वृक्ष हैं, जो छोटी-छोटी झीलों के तटों को सुशोभित
 करते हैं।

पर्यस्तं नन्दया सत्याः स्नानपुण्यतरोदया ।
 विलोक्य भूतेशगिरिं विबुधा विस्मयं ययुः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

पर्यस्तम्—घिरा हुआ; नन्दया—नन्दा नदी से; सत्याः—सती के; स्नान—स्नान से; पुण्य-तर—विशेष रूप से सुगन्धित; उदया—जल से; विलोक्य—देखकर; भूत-ईश—भूतों के स्वामी (शिव) का; गिरिम्—पर्वत; विबुधाः—देवतागण; विस्मयम्—आश्चर्य; ययुः—हुआ।

वहाँ पर अलकनन्दा नामक एक छोटी सी झील है, जिसमें सती स्नान किया करती थीं। यह झील विशेष रूप से शुभ है। कैलास पर्वत की विशेष शोभा देखकर सभी देवता वहाँ के ऐश्वर्य से अत्यधिक विस्त्रित थे।

तात्पर्य : श्रीभागवतचन्द्र चन्द्रिका नामक भाष्य के अनुसार सती जिस जल में स्नान करती थीं वह गंगाजल था अर्थात् गंगा नदी कैलास पर्वत से होकर बहती थी। ऐसा कथन स्वीकार्य हो सकता है, क्योंकि गंगा जल शिव की जटाओं से होकर बहता था। चूँकि गंगा जल शिव के सिर पर ठहर कर तब ब्रह्माण्ड के अन्य भागों में बहता है, अतः बहुत कुछ सम्भव है कि जिस जल से सती स्नान करती थीं और जो अत्यधिक सुवासित था, वह गंगा जल ही था।

ददृशुस्तत्र ते रम्यामलकां नाम वै पुरीम् ।

वनं सौगन्धिकं चापि यत्र तन्नाम पङ्कजम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

ददृशुः—देखा; तत्र—वहाँ (कैलास में); ते—वे (देवता); रम्याम्—अत्यन्त आकर्षक; अलकाम्—अलका; नाम—नामक; वै—निस्सन्देह; पुरीम्—धाम; वनम्—जंगल; सौगन्धिकम्—सौगन्धिक; च—तथा; अपि—भी; यत्र—जिस स्थान में; तत्-नाम—उस नाम की; पङ्कजम्—कमल पुष्पों की जाति।

इस प्रकार देवताओं ने सौगन्धिक नामक वन में अलका नामक विचित्र सुन्दर भाग को देखा। यह वन कमल पुष्पों की अधिकता के कारण सौगन्धिक कहलाता है। सौगन्धिक का अर्थ है “सुगन्धि से पूर्ण।”

तात्पर्य : कभी-कभी अलका को अलकापुरी कहते हैं, जो कुबेर के धाम का भी नाम है। किन्तु कैलास से कुबेर का धाम नहीं देखा जा सकता। अतः यहाँ पर निर्दिष्ट अलका कुबेर की अलकापुरी से पृथक् है। वीरराघव आचार्य के अनुसार अलका का अर्थ “असामान्य रूप से सुन्दर” है। देवताओं ने जिस अलका भूभाग को देखा वहाँ सौगन्धिक नामक कमलपुष्प पाये जाते हैं, जो अपनी विशिष्ट सुगन्धि बिखेरते रहते हैं।

नन्दा चालकनन्दा च सरितौ बाह्यतः पुरः ।
तीर्थपादपदाम्भोजरजसातीव पावने ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

नन्दा—नन्दा; च—तथा; अलकनन्दा—अलकनन्दा; च—तथा; सरितौ—दो नदियाँ; बाह्यतः—बाहर की ओर; पुरः—नगरी से;
तीर्थ-पाद—भगवान् के; पद-अम्भोज—चरणकमल की; रजसा—धूलि से; अतीव—अत्यधिक; पावने—पवित्र हुई।

उन्होंने नन्दा तथा अलकनन्दा नामक दो नदियाँ भी देखीं। ये दोनों नदियाँ भगवान् गोविन्द के चरणकमलों की रज से पवित्र हो चुकी हैं।

ययोः सुरस्त्रियः क्षत्तरवरुह्य स्वधिष्णयतः ।
क्रीडन्ति पुंसः सिञ्चन्त्यो विगाह्य रतिकर्षिताः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

ययोः—जिन दोनों (नदियों) में; सुर-स्त्रियः—स्वर्ग की सुन्दरियाँ अपने पतियों समेत; क्षत्तः—हे विदुर; अवरुह्य—उतर कर;
स्व-धिष्णयतः—अपने-अपने विमानों से; क्रीडन्ति—क्रीड़ा करते हैं; पुंसः—उनके पति; सिञ्चन्त्यः—जल छिड़क कर;
विगाह्य—(जल में) प्रवेश करके; रति-कर्षिताः—जिनका रति-सुख घट चुका है।

हे क्षत्त, हे विदुर, स्वर्ग की सुन्दरियाँ अपने-अपने पतियों सहित विमानों से इन नदियों में उतरती हैं और काम-क्रीड़ा के पश्चात् जल में प्रवेश करती हैं तथा अपने पतियों के ऊपर पानी उलीच कर आनन्द उठाती हैं।

तात्पर्य : ऐसा ज्ञात होता है कि स्वर्ग लोक की ललनाएँ भी विषय-सुख के विचारों से दूषित रहती हैं, फलतः वे विमानों में चढ़कर नन्दा तथा अलकनन्दा नदियों में स्नान करने आती हैं। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि इन दोनों नदियों का जल भगवान् के चरणकमलों की रज से पावन होता रहता है। दूसरे शब्दों में, जिस प्रकार भगवान् नारायण के चरण के अँगूठे से निकलने के कारण गंगा पवित्र है, उसी प्रकार से चाहे जल हो या कोई अन्य वस्तु जब वह भगवान् की भक्ति के सम्पर्क में आती है, तो वह पवित्र और दिव्य हो जाती है। भक्ति के विधि-विधान इस सिद्धान्त पर टिके हैं कि जो वस्तु भगवान् के चरणकमलों के सम्पर्क में आती है, वह भौतिक कल्मष से तुरन्त मुक्त हो जाती है।

स्वर्गलोक की सुन्दरियाँ विषयी जीवन के दूषित विचार लेकर पवित्र नदियों में स्नान के लिए आती हैं और अपने पतियों पर पानी उछाल-उछाल कर आनन्दित होती हैं। इस सम्बन्ध में दो शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। रति-कर्षिताः का अर्थ है कि रति-सुख के पश्चात् सुन्दरियाँ क्लान्त हो जाती हैं। यद्यपि वे शारीरिक आवश्यकता में काम-सुख को स्वीकार करती हैं, किन्तु बाद में वे प्रसन्न नहीं

होतीं।

अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भगवान् गोविन्द को तीर्थपाद कहा गया है। तीर्थ का अर्थ है, “पवित्र स्थान” तथा पाद का अर्थ है, “भगवान् के चरणकमल।” लोग पवित्र स्थानों में अपने पापबन्धनों से छूटने के लिए जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जो लोग भगवान् कृष्ण के चरणकमलों में अनुरक्त हैं, वे स्वतः पवित्र हो जाते हैं। भगवान् के चरणकमलों को तीर्थपाद कहा जाता है, क्योंकि उनके संरक्षण में सैकड़ों-हजारों साधु पुरुष तीर्थस्थानों को पवित्र कर देते हैं। गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के महान् आचार्य श्रील नरोत्तमदास ठाकुर का उपदेश है कि हमें विभिन्न तीर्थस्थानों में जाने की आवश्यकता नहीं है। निस्सन्देह, एक स्थान से दूसरे स्थान तक की यात्रा कष्टदायक है, किन्तु जो बुद्धिमान होता है, वह गोविन्द के चरणकमलों की शरण में जा सकता है, जिससे वह अपनी तीर्थ यात्रा के परिणामस्वरूप स्वतः शुद्ध हो जाता है। जो कोई भी गोविन्द के चरणकमल की सेवा में अटल है, वह तीर्थपाद है, उसे तीर्थस्थलों में भ्रमण करने की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि भगवान् के चरणकमलों की सेवा में लिप्त रह कर वह ऐसी यात्रा के समस्त लाभ उठा सकता है। ऐसा शुद्ध भक्त जो भगवान् के चरणकमलों में अटूट श्रद्धा रखता है विश्व के किसी भी भाग में जहां रहने का वह निर्णय लेता है, तीर्थ स्थान बन जाता है। तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि (भागवत १.१३.१०)। ऐसे स्थान शुद्ध भक्तों की उपस्थिति के कारण पवित्र हो जाते हैं, यदि भगवान् या उनका शुद्ध भक्त किसी स्थान में रहता है, तो वह स्वतः तीर्थस्थल में परिणत हो जाता है। दूसरे शब्दों में, ऐसा शुद्ध भक्त जो शत-प्रतिशत भगवान् की सेवा में तन्मय रहता है, विश्व के किसी भी भाग में रह सकता है और वह स्थान शीघ्र ही पवित्र स्थल बन जाता है, जहाँ वह भगवान् की इच्छानुसार उनकी सेवा कर सकता है।

ययोस्तत्स्नानविभ्रष्टनवकुङ्कुमपिञ्जरम् ।

वितृषोऽपि पिबन्त्यम्भः पाययन्तो गजा गजीः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

ययोः—जिन दोनों नदियों में; तत्-स्नान—उनके स्नान से; विभ्रष्ट—गिरे हुए; नव—ताजे; कुङ्कुम—कुंकुम चूर्ण से; पिञ्जरम्—पीला; वितृषः—प्यासे न होने पर; अपि—भी; पिबन्ति—पीते हैं; अम्भः—जल; पाययन्तः—पिलाते हैं; गजाः—हाथी; गजीः—हथिनियाँ।

स्वर्गलोक की सुन्दरियों द्वारा जल में स्नान करने के पश्चात् उनके शरीर के कुंकुम के

कारण वह जल पीला तथा सुगंधित हो जाता है। अतः वहाँ पर स्नान करने के लिए हाथी अपनी-अपनी पत्नी हथिनियों के साथ आते हैं और प्यासे न होने पर भी वे उस जल को पीते हैं।

तारहेममहारत्नविमानशतसङ्कुलाम् ।

जुष्टां पुण्यजनस्त्रीभिर्यथा खं सतडिद्धनम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

तार-हेम—मोती तथा सोने का; महा-रत्न—बहुमूल्य रत्न; विमान—विमानों का; शत—सैकड़ों; सङ्कुलाम्—पुंजित; जुष्टाम्—व्यक्त, भोगा गया; पुण्यजन-स्त्रीभिः—यक्षों की पत्नियों द्वारा; यथा—जिस प्रकार; खम्—आकाश; स-तडित्-घनम्—बिजली तथा बादलों से युक्त।

स्वर्ग के निवासियों के विमानों में मोती, सोना तथा अनेक बहुमूल्य रत्न जड़े रहते हैं। स्वर्ग के निवासियों की तुलना उन बादलों से की गई है, जो आकाश में रहकर बिजली की चमक से सुशोभित रहते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर जिन विमानों की चर्चा है, वे हमारे परिचित विमानों से भिन्न हैं। श्रीमद्भागवत तथा समस्त वैदिक साहित्य में विमान के अनेक वर्णन हैं। विभिन्न लोकों में भिन्न-भिन्न प्रकार के विमान होते हैं। इस पृथ्वी लोक में विमान यंत्रचालित हैं, किन्तु अन्य लोकों के विमान मंत्र-बल से चालित होते हैं, न कि यंत्र से। वे विशेषतः स्वर्गलोक के वासियों के आमोद-प्रमोद के लिए भी उपयोग में लाये जाते हैं जिससे वे एक लोक से दूसरे लोक में जा सकें। सिद्धलोक में तो विमान के बिना ही एक लोक से दूसरे लोक की यात्रा की जा सकती है। स्वर्ग के सुन्दर विमानों की तुलना यहाँ पर आकाश से की गई है, क्योंकि वे आकाश में उड़ते हैं। यात्रियों की तुलना बादलों से की गई है। स्वर्ग के निवासियों की मनोरम ललनाओं की तुलना बिजली से की गई है। कुल मिलाकर, उच्च लोकों से यात्रियों के साथ कैलास पर आने वाले विमान देखने में अत्यन्त मनोहर लगते थे।

हित्वा यक्षेश्वरपुरीं वनं सौगन्धिकं च तत् ।

द्रुमैः कामदुग्धैर्हृद्यं चित्रमाल्यफलच्छदैः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

हित्वा—पीछे छोड़ कर; यक्ष-ईश्वर—यक्षों के स्वामी (कुबेर) का; पुरीम्—धाम, वासस्थान; वनम्—जंगल; सौगन्धिकम्—सौगन्धिक नामक; च—तथा; तत्—वह; द्रुमैः—वृक्षों से; काम-दुग्धैः—कामनाओं को पूरा करने वाले; हृद्यम्—आकर्षक; चित्र—चित्रित; माल्य—पुष्प; फल—फल; छदैः—पत्तियों से।

यात्रा करते हुए देवता सौगन्धिक वन से होकर निकले जो अनेक प्रकार के पुष्पों, फलों तथा कल्पवृक्षों से पूर्ण था। इस वन से जाते हुए उन्होंने यक्षेश्वर के प्रदेशों को भी देखा।

तात्पर्य : यक्षेश्वर को कुबेर भी कहा जाता है और वे देवताओं के खजांची भी हैं। वैदिक साहित्य में उनका जो वर्णन हुआ है उसमें यह बताया गया है कि वे अत्यन्त धनी हैं। इन श्लोकों से लगता है कि कैलास कुबेर के निवासस्थान के निकट ही है। यहाँ इसका भी उल्लेख है कि वन कल्पवृक्षों से पूर्ण था। ब्रह्म-संहिता से हमें कल्पवृक्ष के विषय में जानकारी मिलती है, जो वैकुण्ठ लोक में, विशेष रूप से कृष्णलोक में पाया जाता है। यहाँ पर हमें यह पता चलता है कि ऐसे कल्पवृक्ष श्रीकृष्ण की कृपा से शिव के आवास कैलास में भी पाये जाते हैं। ऐसा लगता है कि कैलास का विशिष्ट महत्त्व है; यह प्रायः कृष्ण के धाम सदृश है।

रक्तकण्ठखगानीकस्वरमण्डितषट्पदम् ।

कलहंसकुलप्रेष्ठं खरदण्डजलाशयम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

रक्त—लाल; कण्ठ—गर्दन; खग-अनीक—अनेक पक्षियों का; स्वर—मीठी बोली से; मण्डित—सुशोभित; षट्-पदम्—भौर; कलहंस-कुल—हंसों के झुंडों का; प्रेष्ठम्—अत्यन्त प्रिय; खर-दण्ड—कमल पुष्प; जल-आशयम्—झील, सरोवर।

उस नैसर्गिक वन में अनेक पक्षी थे जिनकी गर्दन लाल रंग की थीं और उनका कलरव भौरों के गुंजार से मिल रहा था। वहाँ के सरोवर शब्द करते हंसों के समूहों तथा लम्बे नाल वाले कमल पुष्पों से सुशोभित थे।

तात्पर्य : सरोवरों के कारण वन की शोभा में चार चाँद लग रहे थे। यहाँ यह बताया गया है कि सरोवर कमलपुष्पों तथा हंसों से सुशोभित थे। ये हंस क्रीड़ा कर रहे थे और पक्षियों तथा गुंजरित भौरों के साथ-साथ गा रहे थे। इन सब विशेषताओं से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वह स्थान कितना रमणीक था और वहाँ से निकलने वाले देवता उस वातावरण में कितना सुख अनुभव कर रहे थे। इस पृथ्वीलोक में मनुष्यों ने अनेक मार्ग तथा सुन्दर स्थल निर्मित किये हैं, किन्तु उनमें से कोई भी कैलास के स्थलों से बढ़कर नहीं होगा, जैसाकि इन श्लोकों में वर्णित है।

वनकुञ्जरसङ्घहरिचन्दनवायुना ।

अधि पुण्यजनस्त्रीणां मुहुरुन्मथयन्मनः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

वन-कुञ्जर—जंगली हाथी से; सङ्घ—रगड़ा गया; हरिचन्दन—चन्दन के वृक्ष; वायुना—मन्द वायु से; अधि—अधिक; पुण्यजन-स्त्रीणाम्—यक्षों की पत्नियों के; मुहुः—पुनः पुनः; उन्मथयत्—विचलित; मनः—मन।

ऐसा वातावरण जंगली हाथियों को विचलित कर रहा था, जो चन्दन वृक्ष के जंगल में झुंडों में एकत्र हुए थे। बहती हुई वायु अप्सराओं के मनों को अधिकाधिक इन्द्रियभोग के लिए विचलित किए जा रही थी।

तात्पर्य : जब भी इस भौतिक जगत में सुन्दर वातावरण मिलता है, तो विषयीजनों के मन में तुरन्त ही काम-वासना जाग्रत हो जाती है। यह प्रवृत्ति भौतिक ब्रह्माण्ड में न केवल इस लोक में, वरन् उच्चतर लोकों में भी पाई जाती है। इस जगत में ऐसे वातावरण का मस्तिष्क पर जो प्रभाव पड़ता है, उससे सर्वथा विपरीत वैकुण्ठ लोक में होता है। वहाँ की स्त्रियाँ इस लोक की स्त्रियों से सैकड़ों-हजारों गुना अधिक सुन्दर होती हैं और वहाँ का आध्यात्मिक वातावरण भी उत्तम होता है। ऐसे मनमोहक वातावरण के होते हुए भी वैकुण्ठलोक के वासियों का मन भगवान् के यशोगान में इतना निमग्न रहता है कि इस सुख के आगे वह काम-सुख तुच्छ प्रतीत होता है, जो भौतिक जगत के समस्त आनन्द की चरमावस्था है। दूसरे शब्दों में, श्रेष्ठतर वातावरण तथा सुविधा होने पर भी वहाँ विषयी जीवन को कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता। जैसाकि *भगवद्गीता* में (२.५९) कहा गया है—*परं दृष्ट्वा निवर्तते—* आध्यात्मिक दृष्टि से वहाँ के वासी इतने उन्नत होते हैं कि ऐसी आध्यात्मिकता की उपस्थिति में विषयी जीवन तुच्छ लगता है।

वैदूर्यकृतसोपाना वाप्य उत्पलमालिनीः ।

प्राप्तं किम्पुरुषैर्दृष्ट्वा त आराद्दृशुर्वटम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

वैदूर्य-कृत—वैदूर्य की बनी; सोपानाः—सीढ़ियाँ; वाप्यः—झीलें; उत्पल—कमल पुष्पों की; मालिनीः—पंक्तियों से युक्त; प्राप्तम्—बसा हुआ; किम्पुरुषैः—किम्पुरुषों द्वारा; दृष्ट्वा—देखकर; ते—उन देवताओं ने; आरात्—निकट ही; दृशुः—देखा; वटम्—बरगद का वृक्ष।

उन्होंने यह भी देखा कि नहाने के घाट तथा उनकी सीढ़ियाँ वैदूर्यमणि की बनी थीं। जल कमलपुष्पों से भरा था। ऐसी झीलों के निकट से जाते हुए देवता उस स्थान पर पहुँचे जहाँ एक

वट वृक्ष था।

स योजनशतोत्सेधः पादोनविटपायतः ।

पर्यङ्कताचलच्छायो निर्नीडस्तापवर्जितः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह वट वृक्ष; योजन-शत—एक सौ योजन (आठ सौ मील); उत्सेधः—उँचाई; पाद-ऊन—एक चौथाई कम (छह सौ मील); विटप—शाखाओं से; आयतः—फैला हुआ; पर्यङ्क—चारों ओर; कृत—बना हुआ; अचल—स्थिर; छायाः—छाया; निर्नीडः—बिना घोंसले का; ताप-वर्जितः—तापरहित, गर्मी से रहित।

वह वट वृक्ष आठ सौ मील ऊँचा था और उसकी शाखाएँ चारों ओर छह सौ मील तक फैली थीं। उसकी मनोहर छाया से सतत शीतलता छाई थी, तो भी पक्षियों की गूँज सुनाई नहीं पड़ रही थी।

तात्पर्य : सामान्य रूप से प्रत्येक वृक्ष में पक्षियों के घोंसले रहते हैं और शाम को सारे पक्षी एकत्र होकर शोर करते हैं। किन्तु ऐसा लगता है कि इस वट वृक्ष में घोंसले न थे जिससे वह शान्त था। शोर अथवा गर्मी न होने से यह स्थान ध्यान के लिए सर्वथा उपयुक्त था।

तस्मिन्महायोगमये मुमुक्षुशरणे सुराः ।

ददृशुः शिवमासीनं त्यक्तामर्षमिवान्तकम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उस वृक्ष के नीचे; महा-योग-मये—परमेश्वर के ध्यान में मग्न अनेक साधुओं से युक्त; मुमुक्षु—मुक्ति की कामना करने वाले; शरणे—आश्रय; सुराः—देवताओं ने; ददृशुः—देखा; शिवम्—शिव को; आसीनम्—आसन लगाये; त्यक्त-अमर्षम्—क्रोधरहित; इव—मानों; अन्तकम्—अनन्त काल।

देवताओं ने शिव को, जो योगियों को सिद्धि प्रदान करने एवं समस्त लोगों का उद्धार करने में सक्षम थे, उस वृक्ष के नीचे आसीन देखा। अनन्त काल के समान गम्भीर, शिवजी ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो समस्त क्रोध का परित्याग कर चुके हों।

तात्पर्य : इस श्लोक में महायोगमये शब्द अत्यन्त सार्थक है। योग का अर्थ है भगवान् का ध्यान और महायोग का अर्थ है, जो विष्णु की भक्ति में तल्लीन रहते हैं। ध्यान का तात्पर्य है स्मरण करना। भक्ति नौ प्रकार की है, जिसमें स्मरणम् भी एक क्रिया है। इसमें योगी अपने हृदय में विष्णु के रूप का स्मरण करता है। इस तरह उस वट वृक्ष के नीचे अनेक भक्त विष्णु के ध्यान में लगे थे।

महा शब्द संस्कृत के महत् से निकला है। इसका प्रयोग बड़ी संख्या या मात्रा बताने के लिए होता है, अतः महा-योग से सूचित होता है कि वहाँ अनेक बड़े-बड़े योगी तथा भक्त थे, जो विष्णु के रूप का ध्यान धर रहे थे। सामान्य रूप से ऐसे ध्यानकर्ता भव-बन्धन से मुक्ति पाने के इच्छुक रहते हैं और वे वैकुण्ठलोक को जाते हैं। मुक्ति का अर्थ है भव-बन्धन या अज्ञान से छुटकारा। इस भौतिक जगत में हम जन्म-जन्मांतर अपने देहबोध के कारण कष्ट भोगते हैं और दुखमय जीवन से छुटकारा ही मुक्ति है।

सनन्दनाद्यैर्महासिद्धैः शान्तैः संशान्तविग्रहम् ।

उपास्यमानं सख्या च भर्त्रा गुह्यकरक्षसाम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

सनन्दन-आद्यैः—सनन्दन इत्यादि चारों कुमार; महा-सिद्धैः—मुक्त जीव; शान्तैः—साधु प्रकृति का; संशान्त-विग्रहम्—गम्भीर तथा साधु प्रकृति वाले शिव; उपास्यमानम्—प्रशंसित; सख्या—कुबेर द्वारा; च—तथा; भर्त्रा—स्वामी द्वारा; गुह्यक-रक्षसाम्—गुह्यकों तथा राक्षसों द्वारा।

वहाँपर शिवजी कुबेर, गुह्यकों के स्वामी तथा चारों कुमारों जैसी मुक्तात्माओं से घिरे हुए बैठे थे। शिवजी अत्यन्त गम्भीर एवं शान्त थे।

तात्पर्य : शिवजी के साथ आसीन पुरुष महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि चारों कुमार जन्म से ही मुक्त थे। यहाँ यह स्मरणीय है कि इन चारों कुमारों के पिता ने उनसे विवाह करने और नवसृजित ब्रह्माण्ड में प्रजा बढ़ाने के लिए अनुरोध किया था, किन्तु उन्होंने मना कर दिया था और उस समय ब्रह्माजी अत्यन्त क्रुद्ध हुए थे। उसी क्रुद्ध स्थिति में रुद्र या शिव का जन्म हुआ। इस प्रकार वे परस्पर घनिष्ठ थे। कुबेर, जो देवताओं के कोषाध्यक्ष हैं, अत्यधिक धनवान हैं। इस प्रकार से कुमारों तथा कुबेर के साथ उनकी घनिष्ठता से आभास होता है कि उनके पास समस्त दिव्य एवं भौतिक ऐश्वर्य हैं। वस्तुतः वे परमेश्वर के गुणात्मक अवतार हैं, अतः उनका पद अत्यन्त सम्माननीय है।

विद्यातपोयोगपथमास्थितं तमधीश्वरम् ।

चरन्तं विश्वसुहृदं वात्सल्याल्लोकमङ्गलम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

विद्या—ज्ञान; तपः—तपस्या; योग-पथम्—भक्ति मार्ग; आस्थितम्—स्थित; तम्—उसको (शिव को); अधीश्वरम्—इन्द्रियों के स्वामी; चरन्तम्—(तप इत्यादि) करते हुए.); विश्व-सुहृदम्—समस्त संसार के सखा; वात्सल्यात्—पूर्ण स्नेह से; लोक-मङ्गलम्—प्रत्येक के लिए कल्याणकर।

देवताओं ने शिवजी को इन्द्रिय, ज्ञान, सकाम कर्मों तथा सिद्धि मार्ग के स्वामी के रूप में स्थित देखा। वे समस्त जगत के भिन्न हैं और सबके लिए पूर्ण स्नेह रखने के कारण वे अत्यन्त कल्याणकारी हैं।

तात्पर्य : शिवजी ज्ञान तथा तप से पूर्ण हैं। जो कार्य के त्रिगुणों को समझता है, वह भगवान् के भक्तिमार्ग में स्थित माना जाता है। जब तक किसी को भक्ति करने की विधियों का पूरा ज्ञान नहीं हो जाता, तब तक वह भगवान् की सेवा नहीं कर सकता।

यहाँ पर शिव को अधीश्वर कहा गया है। ईश्वर का अर्थ है 'नियन्ता' और अधीश्वर का विशेष अर्थ है 'इन्द्रियों का नियन्ता'। सामान्यतः भौतिकता से दूषित हमारी इन्द्रियाँ, इन्द्रिय-तृप्ति के कार्यों में लगी रहने की ओर प्रवृत्त होती हैं, किन्तु जब कोई पुरुष ज्ञान तथा तपस्या से ऊपर उठ जाता है, तो इन्द्रियाँ पवित्र हो जाती हैं और वे भगवान् की सेवा में लग जाती हैं। शिवजी ऐसी सिद्धि के प्रतीक हैं, अतः धर्मग्रन्थों में कहा जाता है वैष्णवानां यथा शम्भुः—शिवजी वैष्णव हैं। अपने कर्मों से वे इस जगत में समस्त बद्धजीवों को सिखाते हैं कि किस प्रकार अहर्निश भक्ति में लगा जाये। इसीलिए उन्हें यहाँ लोकमंगल अर्थात् समस्त बद्धजीवों के लिए कल्याणकारी कहा गया है।

लिङ्गं च तापसाभीष्टं भस्मदण्डजटाजिनम् ।

अङ्गेन सन्ध्याभ्ररुचा चन्द्रलेखां च बिभ्रतम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

लिङ्गम्—चिह्न; च—तथा; तापस-अभीष्टम्—शैव साधुओं द्वारा वाञ्छित; भस्म—राख; दण्ड—डंडा; जटा—जटाजूट; अजिनम्—मृग चर्म; अङ्गेन—अपने शरीर से; सन्ध्या-आभ्र—लाल लाल; रुचा—रँगा हुआ; चन्द्र-लेखाम्—अर्द्धचन्द्र कला; च—तथा; बिभ्रतम्—धारण किये।

वे मृगचर्म पर आसीन थे और सभी प्रकार की तपस्या कर रहे थे। शरीर में राख लगाये रहने से वे संध्याकालीन बादल की भाँति दिखाई पड़ रहे थे। उनकी जटाओं में अर्द्धचन्द्र का चिह्न था, जो सांकेतिक प्रदर्शन है।

तात्पर्य : शिव की तपस्या के चिह्न वैष्णवों जैसे नहीं होते। वे सर्वश्रेष्ठ वैष्णव तो हैं, किन्तु वे

मनुष्यों की एक ऐसी विशेष श्रेणी के लिए लक्षण प्रदर्शित करते हैं, जो वैष्णव नियमों का पालन नहीं कर सकते। शिव के अनुयायी शैव सामान्य रूप से शिव की ही भाँति वेष बनाते हैं और कभी-कभी वे गांजा तथा मादक द्रव्यों का सेवन करते हैं। वैष्णव धर्म के अनुयायी ऐसी आदतों को कभी स्वीकार नहीं कर सकते।

उपविष्टं दर्भमय्यां बृस्यां ब्रह्म सनातनम् ।
नारदाय प्रवोचन्तं पृच्छते शृण्वतां सताम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

उपविष्टम्—बैठे हुए; दर्भ-मय्याम्—दर्भ से बने; बृस्याम्—चटाई (आसन) पर; ब्रह्म—परम सत्य; सनातनम्—शाश्वत;
नारदाय—नारद को; प्रवोचन्तम्—बोलते हुए; पृच्छते—पूछते हुए; शृण्वताम्—सुनते हुए; सताम्—साधु पुरुषों का।

वे तृण (कुश) के आसन पर बैठे थे और वहाँ पर उपस्थित सबों को, विशेषरूप से नारद मुनि, को परम सत्य के विषय में उपदेश दे रहे थे।

तात्पर्य : शिवजी कुशासन पर बैठे थे, क्योंकि परम सत्य के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए तपस्या करने वाले लोग ऐसा ही आसन चुनते हैं। इस श्लोक में विशेषरूप से उल्लेख है कि वे सुविख्यात नारदमुनि से संभाषण कर रहे थे। नारद भक्ति के विषय में शिव से पूछ रहे थे और शिवजी सर्वश्रेष्ठ वैष्णव होने के नाते उन्हें उपदेश दे रहे थे। कहने का तात्पर्य यह है कि शिव तथा नारद वेद-ज्ञान की चर्चा कर रहे थे, किन्तु विषय था भक्ति। इस सम्बन्ध में दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि शिव महान् उपदेशक हैं और नारद मुनि एक महान् श्रोता हैं। अतः वैदिक ज्ञान का प्रमुख विषय भक्ति है।

कृत्वोरौ दक्षिणे सव्यं पादपद्मं च जानुनि ।
बाहुं प्रकोष्ठेऽक्षमालामासीनं तर्कमुद्रया ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

कृत्वा—रखकर; ऊरौ—जाँघ पर; दक्षिणे—दाहिनी; सव्यम्—बाँये; पाद-पद्मम्—चरणकमल; च—तथा; जानुनि—घुटने पर;
बाहुम्—हाथ; प्रकोष्ठे—दाहिनी हाथ की कलाई में; अक्ष-मालाम्—रुद्राक्ष की माला; आसीनम्—बैठे हुए; तर्क-मुद्रया—तर्क मुद्रा से।

उनका बायाँ पैर उनकी दाहिनी जाँघ पर रखा था और उनका बायाँ हाथ बायीं जाँघ पर था। दाहिने हाथ में उन्होंने रुद्राक्ष की माला पकड़ रखी थी। यह आसन वीरासन कहलाता है। इस

प्रकार वे वीरासन में थे और उनकी अँगुली तर्क-मुद्रा में थी।

तात्पर्य : अष्टांग योग अभ्यास पद्धति के अनुसार यहाँ पर वर्णित आसन वीरासन कहलाता है। योगाभ्यास में आठ विभाग हैं, यथा, यम, नियम इत्यादि। वीरासन के अतिरिक्त अन्य आसन भी हैं, यथा पद्मासन, सिद्धासन। परमात्मा विष्णु की अनुभूति के स्तर तक उठे बगैर इन आसनों के अभ्यास को योग की सिद्धावस्था नहीं कहा जा सकता। शिव को योगेश्वर कहा जाता है और कृष्ण को योगेश्वर कहा जाता है। योगेश्वर इस बात का सूचक है कि जहाँ तक योगाभ्यास का प्रश्न है, शिव को कोई पछाड़ नहीं सकता जबकि योगेश्वर सूचित करता है कि कृष्ण को कोई योग की सिद्धि में पछाड़ नहीं सकता। एक अन्य सार्थक शब्द तर्क-मुद्रा है। इसमें अँगुलियाँ खुली रखी जाती हैं और दूसरी अँगुली को भुजा के सहित ऊपर उठाया जाता है, जिससे श्रोताओं पर किसी विषय वस्तु का प्रभाव पड़े। वास्तव में यह लाक्षणिक अभिव्यक्ति है।

तं ब्रह्मनिर्वाणसमाधिमाश्रितं

व्युपाश्रितं गिरिशं योगकक्षाम् ।

सलोकपाला मुनयो मनूना-

माद्यं मनुं प्राञ्जलयः प्रणेमुः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (शिव को); ब्रह्म-निर्वाण—ब्रह्मानन्द में; समाधिम्—समाधि में; आश्रितम्—लीन; व्युपाश्रितम्—टेके हुए; गिरिशम्—शिव; योग-कक्षाम्—अपने बायें घुटने को गाँठदार कपड़े से मजबूती से कसे; स-लोक-पाला:—देवताओं सहित (इन्द्र इत्यादि); मुनयः—साधुगण; मनूनाम्—समस्त चिन्तकों का; आद्यम्—प्रमुख; मनुम्—चिन्तक; प्राञ्जलयः—हाथ जोड़े; प्रणेमुः—प्रणाम किया।

समस्त मुनियों तथा इन्द्र आदि देवताओं ने हाथ जोड़कर शिवजी को सादर प्रणाम किया।

शिवजी ने केसरिया वस्त्र धारण कर रखा था और समाधि में लीन थे जिससे वे समस्त साधुओं में अग्रणी प्रतीत हो रहे थे।

तात्पर्य : इस श्लोक में ब्रह्मानन्द शब्द महत्त्वपूर्ण है। ब्रह्मानन्द या ब्रह्म-निर्वाण की व्याख्या प्रह्लाद महाराज ने की है। जब मनुष्य अधोक्षज अर्थात् भगवान् में, जो भौतिक पुरुषों की ज्ञानेन्द्रियों के परे हैं, पूर्णतया लीन हो जाता है, तो वह ब्रह्मानन्द पद पर स्थित होता है।

भगवान् के अस्तित्व, नाम, रूप, गुण तथा लीलाओं के विषय में कोई धारणा बनाना कठिन है

क्योंकि वे भौतिकतावादी पुरुषों की अवधारणा से परे स्थित हैं। चूँकि भौतिकतावादी पुरुष न तो ईश्वर के सम्बन्ध में कुछ सोच-विचार सकते हैं, और न कोई धारणा बना सकते हैं, अतः वे ईश्वर को मृत मानते हैं, किन्तु वास्तव में भगवान् अपने सच्चिदानन्द रूप में सदैव विद्यमान रहते हैं। ईश्वर के रूप में केन्द्रित करके निरन्तर ध्यान करना *समाधि* है। *समाधि* का अर्थ है केन्द्रीभूत ध्यान, अतः जो व्यक्ति भगवान् का सतत ध्यान करने की योग्यता रखता है, वह सदैव समाधि में रहता समझा जाता है और वह ब्रह्म-निर्वाण या *ब्रह्मानन्द* का आनन्द लेता है। शिवजी में ये लक्षण प्रकट थे, अतएव यह कहा गया है कि वे *ब्रह्मानन्द* में लीन थे।

अन्य महत्त्वपूर्ण शब्द है *योग-कक्षाम्*। *योगकक्षा* एक आसन है, जिसमें बाईं जाँघ को केसरिया रंग के गाँठदार वस्त्र के नीचे दृढ़ता से स्थिर रखा जाता है। यहाँ पर *मनूनाम् आद्यम्* शब्द भी सार्थक है, क्योंकि उनसे दार्शनिक अथवा विचारपूर्ण व्यक्ति का बोध होता है। ऐसा व्यक्ति *मनु* कहलाता है। इस श्लोक में शिव को विचारवान व्यक्तियों का मुखिया कहा गया है। निस्सन्देह, शिव कभी व्यर्थ चिन्तन में अपने को संलग्न नहीं करते, किन्तु, जैसाकि पिछले श्लोक में कहा गया है, वे असुरों को उनकी पतित अवस्था से उबारने के लिए सदैव चिन्तित रहते हैं। कहा जाता है कि चैतन्य महाप्रभु के काल में सदाशिव अद्वैत प्रभु के रूप में प्रकट हुए और अद्वैत प्रभु का मुख्य कार्य था पतित आत्माओं को उबार कर कृष्णभक्ति में लगाना। चूँकि लोग अपने को वृथा के कार्यों में लगाये रहते थे जिससे उनकी भौतिक सत्ता बनी रहे, अतः भगवान् शिव ने अपने अद्वैत रूप में परमेश्वर से प्रार्थना की कि वे भगवान् चैतन्य के रूप में प्रकट हों, जिससे मोहग्रस्त जीवों का उद्धार हो सके। वस्तुतः अद्वैत प्रभु की प्रार्थना पर ही भगवान् चैतन्य का आविर्भाव हुआ। इसी प्रकार शिवजी का एक *सम्प्रदाय* है, जिसे रुद्र *सम्प्रदाय* कहते हैं। वे सदैव पतित आत्माओं के उद्धार के विषय में सोचते रहते हैं, जैसाकि अद्वैत प्रभु ने किया।

स तूपलभ्यागतमात्मयोनिं

सुरासुरेशैरभिवन्दिताङ्घ्रिः ।

उत्थाय चक्रे शिरसाभिवन्दन-

महत्तमः कस्य यथैव विष्णुः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

सः—शिव; तु—लेकिन; उपलभ्य—देखकर; आगतम्—आया हुआ; आत्म-योनिम्—ब्रह्मा को; सुर-असुर-ईशैः—सर्वश्रेष्ठ देवताओं तथा असुरों द्वारा; अभिवन्दित-अङ्घ्रिः—जिनके चरण पूजित हैं; उत्थाय—खड़े होकर; चक्रे—किया; शिरसा—शिर से; अभिवन्दनम्—सादर नमस्कार; अर्हत्तमः—वामनदेव ने; कस्य—कश्यप का; यथा एव—जिस प्रकार; विष्णुः—विष्णु।

शिवजी के चरणकमल देवताओं तथा असुरों द्वारा समान रूप से पूज्य थे, फिर भी अपने उच्च पद की परवाह न करके उन्होंने ज्योंही देखा कि अन्य देवताओं में ब्रह्मा भी हैं, तो वे तुरन्त खड़े हो गये और झुक कर उनके चरणकमलों का स्पर्श करके उनका सत्कार किया, जिस प्रकार वामनदेव ने कश्यप मुनि को सादर नमस्कार किया था।

तात्पर्य : कश्यप मुनि जीवात्माओं की श्रेणी में थे, किन्तु उनके एक दिव्य पुत्र वामनदेव हुआ जो विष्णु का अवतार था। इस तरह वामनदेव ने भगवान् होते हुए भी कश्यप मुनि को नमस्कार किया। इसी प्रकार जब भगवान् कृष्ण बालक थे तो वे अपने माता तथा पिता नन्द-यशोदा को नमस्कार करते थे। यही नहीं, कुरुक्षेत्र के युद्ध में भी भगवान् कृष्ण ने महाराज युधिष्ठिर के पाँव छुए थे, क्योंकि वे ज्येष्ठ थे। तो ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् हों या शिव तथा अन्य भक्त, सबों ने अपने-अपने उच्च पद के बावजूद उदाहरण प्रस्तुत करते हुए शिक्षा दी कि किस प्रकार अपने गुरुजनों को नमस्कार करना चाहिए। शिव ने ब्रह्माजी को नमस्कार किया, क्योंकि वे उनके पिता थे, जिस प्रकार से कश्यप मुनि वामन के पिता थे।

तथापरे सिद्धगणा महर्षिभि-

ये वै समन्तादनु नीललोहितम् ।

नमस्कृतः प्राह शशाङ्कशेखरं

कृतप्रणामं प्रहसन्निवात्मभूः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

तथा—उसी प्रकार; अपरे—अन्य; सिद्ध-गणाः—सिद्ध जन; महा-ऋषिभिः—बड़े-बड़े ऋषियों सहित; ये—जो; वै—निस्सन्देह; समन्तात्—चारों ओर से; अनु—पीछे; नीललोहितम्—शिव; नमस्कृतः—नमस्कार करते हुए; प्राह—कहा; शशाङ्क-शेखरम्—शिव से; कृत-प्रणामम्—प्रणाम करके; प्रहसन्—हँसते हुए; इव—सदृश्य; आत्मभूः—ब्रह्मा ने।

शिवजी के साथ जितने भी ऋषि, यथा नारद आदि, बैठे हुए थे उन्होंने भी ब्रह्मा को सादर नमस्कार किया। इस प्रकार पूजित होकर शिव से ब्रह्मा हँसते हुए कहने लगे।

तात्पर्य : ब्रह्मा हँस रहे थे, क्योंकि उन्हें पता था कि शिवजी जिस प्रकार जल्दी प्रसन्न होते हैं उसी

तरह वे जल्दी क्रुद्ध भी हो जाते हैं। उन्हें भय था कि वे कहीं क्रुद्ध न हों, क्योंकि उनकी पत्नी का निधन हो चुका था और वे दक्ष द्वारा अपमानित हो चुके थे। अतः अपने भय को छिपाने के लिए वे हँसे और शिव को इस प्रकार से सम्बोधित किया।

ब्रह्मोवाच

जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनिबीजयोः ।

शक्तेः शिवस्य च परं यत्तद्ब्रह्म निरन्तरम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मा उवाच—ब्रह्मा ने कहा; जाने—जानता हूँ; त्वाम्—तुमको (शिव को); ईशम्—नियन्ता; विश्वस्य—सम्पूर्ण भौतिक जगत का; जगतः—दृश्य जगत का; योनि-बीजयोः—माता तथा पिता दोनों का; शक्तेः—शक्ति का; शिवस्य—शिव का; च—तथा; परम्—परब्रह्म; यत्—जो; तत्—वह; ब्रह्म—बिना परिवर्तन के; निरन्तरम्—बिना किसी भौतिक गुण के।

ब्रह्मा ने कहा : हे शिव, मैं जानता हूँ कि आप सारे भौतिक जगत के नियन्ता, दृश्य जगत के माता-पिता और दृश्य जगत से भी परे परब्रह्म हैं। मैं आपको इसी रूप में जानता हूँ।

तात्पर्य : यद्यपि शिव ने ब्रह्मा को सादर नमस्कार किया था, किन्तु ब्रह्मा जानते थे कि शिव का पद उनसे बड़ा है। शिव के पद का वर्णन *ब्रह्म-संहिता* में इस प्रकार दिया हुआ है—भगवान् विष्णु तथा शिव की मूल स्थितियों में कोई अन्तर नहीं है, तो भी शिव भगवान् विष्णु से भिन्न हैं। वहाँ यह उदाहरण दिया गया है कि दही में जो दूध है, वह दूध से, जिससे दही बना है, भिन्न नहीं है।

त्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्त्योः स्वरूपयोः ।

विश्वं सृजसि पास्यत्सि क्रीडन्नूर्णपटो यथा ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; एव—ही; भगवन्—हे भगवान्; एतत्—यह; शिव-शक्त्योः—अपनी शुभ शक्ति में स्थित होकर; स्वरूपयोः—अपने व्यक्तिगत विस्तार से; विश्वम्—यह ब्रह्माण्ड; सृजसि—उत्पन्न करते हो; पासि—पालन करते हो; अत्सि—संहार करते हो; क्रीडन्—खेलते हुए; ऊर्ण-पटः—मकड़ी का जाला; यथा—जिस प्रकार।

हे भगवान्, आप अपने व्यक्तिगत विस्तार से इस दृश्य जगत की सृष्टि, पालन तथा संहार उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार मकड़ी अपना जाला बनाती है, बनाये रखती हैं और फिर अन्त कर देती हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में *शिव-शक्ति* शब्द महत्त्वपूर्ण है। *शिव* का अर्थ है शुभ और *शक्ति* का अर्थ है शक्ति। भगवान् की कई प्रकार की शक्तियाँ होती हैं और सभी शुभ हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर

गुण-अवतार कहलाते हैं। इस भौतिक जगत में हम इन तीनों अवतारों की तुलना विभिन्न दृष्टियों से करते हैं, किन्तु वे एक ही परम मंगल के विस्तार होने से सभी शुभ हैं यद्यपि कभी-कभी हम एक गुण को दूसरे से बढ़कर या छोटा मानते हैं। तमोगुण अन्यो से निम्न माना जाता है, किन्तु उच्च धरातल पर यह भी शुभ है। उदाहरणार्थ, सरकार में शिक्षा विभाग तथा अपराध विभाग दोनों होते हैं। कोई भी बाहरी व्यक्ति अपराध विभाग को अशुभ मान सकता है, किन्तु सरकारी दृष्टिकोण से यह विभाग शिक्षा विभाग की ही तरह महत्त्वपूर्ण है, इसीलिए सरकार बिना भेदभाव के दोनों विभागों में समान रूप से वित्तपोषण करती है।

त्वमेव धर्मार्थदुग्धाभिपत्तये

दक्षेण सूत्रेण ससर्जिथाध्वरम् ।

त्वयैव लोकेऽवसिताश्च सेतवो

यान्ब्राह्मणाः श्रद्धते धृतव्रताः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आपने; एव—निश्चय ही; धर्म-अर्थ-दुग्ध—धर्म तथा आर्थिक विकास से प्राप्त लाभ; अभिपत्तये—उनकी रक्षा हेतु; दक्षेण—दक्ष द्वारा; सूत्रेण—निमित्त बनाते हुए; ससर्जिथ—उत्पन्न किया; अध्वरम्—यज्ञ; त्वया—तुम्हारे द्वारा; एव—निश्चय ही; लोके—इस संसार में; अवसिताः—संयमित; च—तथा; सेतवः—वर्णाश्रम संस्था की मर्यादाएँ; यान्—जो; ब्राह्मणाः—ब्राह्मण वर्ग; श्रद्धते—अत्यधिक सम्मान करते हैं; धृत-व्रताः—व्रत लेकर।

हे भगवान्, आपने दक्ष को माध्यम बनाकर यज्ञ-प्रथा चलाई है, जिससे मनुष्य धार्मिक कृत्य तथा आर्थिक विकास का लाभ उठा सकता है। आपके ही नियामक विधानों से चारों वर्णों तथा आश्रमों को सम्मानित किया जाता है। अतः ब्राह्मण इस प्रथा का दृढ़तापूर्वक पालन करने का व्रत लेते हैं।

तात्पर्य : वर्ण तथा आश्रम की वैदिक प्रणाली की कभी भी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए क्योंकि मानव समाज में सामाजिक तथा धार्मिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए ही भगवान् ने स्वयं ये विभाग किये। ब्राह्मणों को समाज का बुद्धिजीवी वर्ग होने के नाते इस विधि-विधान का दृढ़ता से पालन करने का व्रत लेना चाहिए। इस कलियुग में वर्गहीन समाज का निर्माण करने तथा वर्ण एवं आश्रम के नियमों का पालन न करने की प्रवृत्ति एक असम्भव स्वप्न का प्राकट्य है। सामाजिक तथा आध्यात्मिक व्यवस्था के विनाश से वर्गहीन समाज की कल्पना कभी भी साकार नहीं हो सकती।

मनुष्यों को स्रष्टा की तुष्टि के लिए वर्ण तथा आश्रम के नियमों का कड़ाई से पालन करना चाहिए, क्योंकि *भगवद्गीता* में भगवान् कृष्ण द्वारा कहा गया है कि चारों वर्णों की सृष्टि भगवान् द्वारा हुई। उन्हें इसी के अनुसार कार्य करना चाहिए और ईश्वर को प्रसन्न रखना चाहिए, जिस प्रकार शरीर के भिन्न-भिन्न अंग उसकी सेवा में लगे रहते हैं। अपने *विराट*-रूप में ही पुरुषोत्तम भगवान् पूर्ण हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ईश्वर के विराट रूप के क्रमशः मुख, बाहु, उदर तथा पाँव हैं। जब तक वे परम पूर्ण स्वरूप की सेवा में लगे रहते हैं, तभी तक उनका पद सुरक्षित है, अन्यथा वे पक्ष-भ्रष्ट होने से पतित हो जाते हैं।

त्वं कर्मणां मङ्गल मङ्गलानां

कर्तुः स्वलोकं तनुषे स्वः परं वा ।

अमङ्गलानां च तमिस्रमुल्बणं

विपर्ययः केन तदेव कस्यचित् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; कर्मणाम्—कर्तव्यों का; मङ्गल—हे परम शुभ; मङ्गलानाम्—शुभ करने वालों का; कर्तुः—कर्ता का; स्व-लोकम्—क्रम से उच्च लोक; तनुषे—विस्तार करते हैं; स्वः—स्वर्गलोक; परम्—दिव्य लोक; वा—अथवा; अमङ्गलानाम्—अमंगल का; च—तथा; तमिस्रम्—तमिस्र नरक; उल्बणम्—घोर; विपर्ययः—उल्टा; केन—क्यों; तत् एव—निश्चय ही वह; कस्यचित्—किसी के लिए।

हे परम मंगलमय भगवान्, आपने स्वर्गलोक, वैकुण्ठलोक तथा निर्गुण ब्रह्मलोक को शुभ कर्म करने वालों का गन्तव्य निर्दिष्ट किया है। इसी प्रकार जो दुराचारी हैं उनके लिए अत्यन्त घोर नरकों की सृष्टि की है। तो भी कभी-कभी ये गन्तव्य उलट जाते हैं। इसका कारण तय कर पाना अत्यन्त कठिन है।

तात्पर्य : भगवान् को परमेच्छा कहा गया है। परमेच्छा से ही प्रत्येक घटना घटती है। इसीलिए कहा जाता है कि उनकी इच्छा के बिना एक पत्ती भी नहीं हिल सकती। सामान्य रूप से नियम यह है कि शुभ कर्म करने वाले स्वर्गलोक को जाते हैं, भक्तजन वैकुण्ठलोक को जाते हैं और निर्गुण चिन्तक निर्गुण ब्रह्म तेज में पद पाते हैं। किन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि अजामिल जैसे पापी केवल नारायण का नाम लेने से तुरन्त ही वैकुण्ठलोक को प्राप्त होते हैं। यद्यपि अजामिल अपने पुत्र नारायण को पुकार रहा था, किन्तु भगवान् नारायण ने इसे गम्भीरता से ग्रहण करते हुए उसके पापपूर्ण कर्मों के

बावजूद उसे वैकुण्ठलोक भेज दिया। इसी प्रकार राजा दक्ष सदैव यज्ञों के शुभ कर्म में लगा रहता था, किन्तु शिव से रंच मनमुटाव के कारण उसे घोर रूप से दण्डित किया गया। अतः निष्कर्ष यह निकला कि परमेश्वर की इच्छा ही अन्तिम निर्णय है; कोई उसमें तर्क-वितर्क नहीं कर सकता। अतः शुद्ध भक्त सभी परिस्थितियों में भगवान् की परम इच्छा के सम्मुख आत्म-समर्पण कर देता है और उसे ही सर्व-मंगलमय मानता है।

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् ।

हृद्गावपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥

(भागवत १०.१४.८)

इस श्लोक का सारांश यह है कि जब किसी भक्त पर कोई विपत्ति आती है, तो वह इसे परमेश्वर का आशीर्वाद मान कर स्वीकार करता है और अपने विगत दुष्कर्मों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेता है। ऐसी स्थिति में वह अधिक भक्ति करता है और विचलित नहीं होता। जो व्यक्ति भक्ति में लगा रह कर ऐसी मानसिक स्थिति में रहता है, वही वैकुण्ठलोक का भागी है। दूसरे शब्दों में, ऐसे भक्त को प्रत्येक दशा में वैकुण्ठलोक की प्राप्ति होती है।

न वै सतां त्वच्चरणार्पितात्मनां

भूतेषु सर्वेष्वभिपश्यतां तव ।

भूतानि चात्मन्यपृथग्दिदृक्षतां

प्रायेण रोषोऽभिभवेद्यथा पशुम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; वै—लेकिन; सताम्—भक्तों का; त्वत्-चरण-अर्पित-आत्मनाम्—आपके चरणकमलों पर पूर्णतया समर्पण करने वालों का; भूतेषु—जीवात्माओं में; सर्वेषु—सभी प्रकार के; अभिपश्यताम्—ठीक से देखते हुए; तव—तुम्हारा; भूतानि—जीवात्माएँ; च—तथा; आत्मनि—परब्रह्म में; अपृथक्—अभिन्न; दिदृक्षताम्—उस प्रकार देखने वाले; प्रायेण—प्रायः, सदैव; रोषः—क्रोध; अभिभवेत्—होता है; यथा—समान; पशुम्—पशुओं के।

हे भगवान्, जिन भक्तों ने अपना जीवन आपके चरण-कमलों पर अर्पित कर दिया है, वे प्रत्येक प्राणी में परमात्मा के रूप में आपकी उपस्थिति पाते हैं; फलतः वे प्राणी-प्राणी में भेद नहीं करते। ऐसे लोग सभी प्राणियों को समान रूप से देखते हैं। वे पशुओं की तरह क्रोध के वशीभूत नहीं होते, क्योंकि पशु बिना भेदबुद्धि के कोई वस्तु नहीं देख सकते।

तात्पर्य : जब भगवान् किसी असुर पर कुपित होते हैं या उसका वध करते हैं, तो भौतिक दृष्टि से यह प्रतिकूल लगता है, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से यह उसके लिए वरदान सिद्ध होता है। फलतः शुद्ध भक्त भगवान् के क्रोध तथा आशीर्वाद में कोई अन्तर नहीं करते। वे इन दोनों को अन्यों के प्रति तथा अपने प्रति भगवान् के व्यवहार के अनुसार देखते हैं। भक्त किसी भी दशा में भगवान् में कोई दोष नहीं निकालता।

पृथग्धियः कर्मदृशो दुराशयाः

परोदयेनार्पितहृद्भुजोऽनिशम् ।

परान्दुरुक्तैर्वितुदन्त्यरुन्तुदास्

तान्मावधीद्वैवधान्भवद्विधः ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

पृथक्—भिन्न रूप से; धियः—सोचने वाले; कर्म—सकाम कर्म; दृशः—दर्शक; दुराशयाः—तुच्छ बुद्धि; पर-उदयेन—अन्यों की उन्नति से; अर्पित—त्यक्त; हृत्—हृदय; रुजः—क्रोध; अनिशम्—सदैव; परान्—अन्य; दुरुक्तैः—कटु वचन से; वितुदन्ति—पीड़ा पहुँचाता है; अरुन्तुदाः—मर्मभेदी वचनों से; तान्—उनको; मा—नहीं; अवधीत्—मारो; दैव—विधाता द्वारा; वधान्—पहले से मारे हुए; भवत्—आप; विधः—चाहते हैं।

जो लोग भेद-बुद्धि से प्रत्येक वस्तु को देखते हैं, जो केवल सकाम कर्मों में लिप्त रहते हैं, जो तुच्छबुद्धि हैं, जो अन्यों के उत्कर्ष को देखकर दुखी होते हैं और उन्हें कटु तथा मर्मभेदी वचनों से पीड़ा पहुँचाते रहते हैं, वे तो पहले से विधाता द्वारा मारे जा चुके हैं। अतः आप जैसे महान् पुरुष द्वारा उनको फिर से मारने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।

तात्पर्य : जो व्यक्ति भौतिकतावादी हैं, जो भौतिक लाभ के लिए सकाम कर्मों में लगे रहते हैं, वे अन्यों का उत्कर्ष नहीं देख सकते। केवल कतिपय कृष्ण-भक्तों को छोड़कर, सारा विश्व ऐसे ईर्ष्यालु लोगों से पूर्ण है, जो सदैव चिन्ताओं से ग्रस्त रहते हैं, क्योंकि वे शरीर के प्रति आसक्त हैं और आत्म-साक्षात्कार से रहित हैं। चूँकि उनके हृदय सदैव चिन्ता से ग्रस्त रहते हैं, अतः यह मान लेना चाहिए कि विधाता ने उन्हें पहले ही मार दिया है। अतः स्वरूपसिद्ध वैष्णव होने के नाते शिवजी को सलाह दी गई कि वे दक्ष का वध न करें। वैष्णव को पर-दुख-दुखी कहा जाता है, क्योंकि यद्यपि वह किसी भी अवस्था में स्वयं दुखी नहीं होता, किन्तु अन्यों के दुख से दुखी रहता है। अतः वैष्णव को चाहिए कि न तो शरीर, न ही मन के किसी कर्म द्वारा किसी का वध करने का यत्न करे, किन्तु उसे चाहिए कि

दयावश वह अन्यो में कृष्ण-चेतना जगाने का प्रयास करे। कृष्णभावनामृत आन्दोलन संसार के ईष्यालु मनुष्यों को माया के चंगुल से छुड़ाने के लिए ही प्रारम्भ किया गया है। यद्यपि कभी-कभी भक्त संकट में फँस जाते हैं, किन्तु सब कुछ सहकर वे कृष्णभावनामृत को अग्रसर करते हैं। भगवान् चैतन्य का उपदेश है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।

अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

“अपने को तिनके से भी तुच्छ मानकर विनम्र भाव से मनुष्य को भगवान् के पवित्र नाम का जाप करना चाहिए। मनुष्य को वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु होना चाहिए, उसे अहंकार से रहित होना चाहिए और अन्यो का आदर करने के लिए उद्यत रहना चाहिए। ऐसी स्थिति में ही मनुष्य भगवान् के पवित्र नाम का निरन्तर जाप कर सकता है।” (शिक्षाष्टक ३)

वैष्णव को चाहिए कि वह हरिदास ठाकुर, नित्यानंद प्रभु जैसे वैष्णवों का तथा भगवान् जीसस क्राइस्ट का अनुकरण करे। पहले से मारे गये किसी को पुनः मारने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु स्मरण रहे कि वैष्णव को विष्णु या वैष्णवों की निन्दा नहीं सहनी चाहिए, भले ही वह अपनी निन्दा सहन कर ले।

यस्मिन्यदा पुष्करनाभमायया

दुरन्तया स्पृष्टधियः पृथग्दृशः ।

कुर्वन्ति तत्र ह्यनुकम्पया कृपां

न साधवो दैवबलात्कृते क्रमम् ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

यस्मिन्—किसी स्थान में; यदा—जब; पुष्कर-नाभ-मायया—पुष्करनाभ अर्थात् भगवान् की माया से; दुरन्तया—दुर्लभ्य; स्पृष्ट-धियः—मोहित; पृथक्-दृशः—भिन्न-भिन्न प्रकार से देखने वाले पुरुष; कुर्वन्ति—करते हैं; तत्र—वहाँ; हि—निश्चय ही; अनुकम्पया—दयावश; कृपाम्—कृपा, अनुग्रह; न—कभी नहीं; साधवः—साधु पुरुष; दैव-बलात्—विधाता द्वारा; कृते—किया गया; क्रमम्—शौर्य।

हे भगवान्, यदि कहीं भगवान् की दुर्लभ्य माया से पहले से मोहग्रस्त भौतिकतावादी (संसारी) कभी-कभी पाप करते हैं, तो साधु पुरुष दया करके इन पापों को गम्भीरता से नहीं लेता। यह जानते हुए कि वे माया के वशीभूत होकर पापकर्म करते हैं, वह उनका प्रतिघात करने

में अपने शौर्य का प्रदर्शन नहीं करता।

तात्पर्य : कहा गया है कि तपस्वी का अलंकार तो क्षमाशीलता है। संसार के आध्यात्मिक इतिहास में बहुत से ऐसे उदाहरण हैं, जब अनेक साधु पुरुषों को वृथा ही पीड़ित किया गया, किन्तु समर्थ होते हुए भी उन्होंने कोई प्रतिक्रिया नहीं की। उदाहरणार्थ, परीक्षित महाराज को एक ब्राह्मण बालक ने वृथा ही शाप दे दिया था और यद्यपि बालक के पिता ने खेद व्यक्त किया था, किन्तु महाराज परीक्षित ने शाप स्वीकार किया और ब्राह्मण बालक के इच्छानुसार एक सप्ताह के भीतर मर जाना स्वीकार कर लिया। महाराज परीक्षित सम्राट थे और भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों से पूर्ण थे, किन्तु ब्राह्मण जाति के प्रति सम्मान एवं दया के कारण उन्होंने ब्राह्मण बालक के कर्म को रोका नहीं, वरन् सात दिनों के भीतर मरना स्वीकार कर लिया। चूँकि भगवान् कृष्ण चाहते थे कि परीक्षित महाराज इस दण्ड को स्वीकार करें जिससे श्रीमद्भागवत की शिक्षा विश्व में प्रकट हो, फलतः परीक्षित महाराज को उपदेश दिया गया कि वे कोई बदला न लें। वैष्णव अन्वयों के लाभ के लिए सहिष्णु होता है। जब वह अपने शौर्य को नहीं प्रदर्शित करता तो इससे यह नहीं सूचित होता कि उसमें शक्ति का अभाव है, वरन् इससे यह पता चलता है कि वह सम्पूर्ण मानव समाज के कल्याण के लिए सहिष्णु है।

भवांस्तु पुंसः परमस्य मायया

दुरन्तयास्पृष्टमतिः समस्तदृक् ।

तया हतात्मस्वनुकर्मचेतःस्व

अनुग्रहं कर्तुमिहार्हसि प्रभो ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

भवान्—आप; तु—लेकिन; पुंसः—पुरुष की; परमस्य—परम; मायया—भौतिक शक्ति द्वारा; दुरन्तया—अत्यधिक शक्ति का; अस्पृष्ट—अप्रभावित; मतिः—बुद्धि; समस्त-दृक्—प्रत्येक वस्तु को देखने या जानने वाला; तया—उसी माया द्वारा; हत-आत्मसु—हृदय में मोहित; अनुकर्म-चेतःसु—जिनके हृदय सकाम कर्मों द्वारा आकृष्ट हैं; अनुग्रहम्—कृपा; कर्तुम्—करने के लिए; इह—इस प्रसंग में; अर्हसि—आकांक्षा करते हैं; प्रभो—हे भगवान्!.

हे भगवान्, आप परमात्मा की माया के मोहक प्रभाव से कभी मोहित नहीं होते। अतः आप सर्वज्ञ हैं, और जो उसी माया के द्वारा मोहित एवं सकाम कर्मों में अत्यधिक लिप्त हैं, उन पर कृपालु हों और अनुकम्पा करें।

तात्पर्य : वैष्णव कभी भी बहिरंगा शक्ति के प्रभाव से मोहित नहीं होता, क्योंकि वह भगवान् की

प्रेमाभक्ति में लगा रहता है। श्रीकृष्ण भगवद्गीता (७.१४) में कहते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

“मेरी यह दैवी शक्ति अर्थात् त्रिगुणमयी माया से पार पाना दुष्कर है। परन्तु जो मेरी शरण में आ जाते हैं, वे इसे सुगमतापूर्वक तर जाते हैं।” वैष्णव को चाहिए कि माया से मोहित लोगों पर क्रुद्ध होने के बजाय उन का ख्याल रखें, क्योंकि वैष्णव की कृपा के बिना वे माया के चंगुल से नहीं छूट सकते। जो माया द्वारा तिरस्कृत हो चुके हैं उनकी रक्षा भक्तों की अनुकम्पा से होती है।

वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च ।

पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥

“मैं भगवान् के समस्त वैष्णव भक्तों को सादर नमस्कार करता हूँ। वे कल्पतरु के समान हैं, जो सबकी इच्छाओं को पूरा करने वाले हैं। वे पतित बद्ध आत्माओं के लिए दया से ओत-प्रोत रहते हैं।” जो माया के वश में हैं, वे सकाम कर्म के प्रति आकर्षित होते हैं, किन्तु वैष्णव उपदेशक उनके हृदयों को भगवान् श्रीकृष्ण की ओर आकर्षित करता है।

कुर्वध्वरस्योद्धरणं हतस्य भोः

त्वयासमाप्तस्य मनो प्रजापतेः ।

न यत्र भागं तव भागिनो ददुः

कुर्याजिनो येन मखो निनीयते ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

कुरु—करो; अध्वरस्य—यज्ञ का; उद्धरणम्—उद्धार, पूरा किया जाना; हतस्य—मारे हुए का; भोः—हे; त्वया—तुम्हारे द्वारा; असमाप्तस्य—अपूर्ण यज्ञ का; मनो—हे शिव; प्रजापतेः—महाराज दक्ष का; न—नहीं; यत्र—जहाँ; भागम्—भाग, हिस्सा; तव—तुम्हारा; भागिनः—भाग के पात्र; ददुः—नहीं दिया; कु-याजिनः—दुष्ट पुरोहितों ने; येन—दाता से; मखः—यज्ञ; निनीयते—फल पाता है।

हे शिव, आप यज्ञ का भाग पाने वाले हैं तथा फल प्रदान करने वाले हैं। दुष्ट पुरोहितों ने आपका भाग नहीं दिया, अतः आपने सर्वस्व ध्वंस कर दिया, जिससे यज्ञ अधूरा पड़ा है। अब आप जो आवश्यक हो, करें और अपना उचित भाग प्राप्त करें।

जीवताद्यजमानोऽयं प्रपद्येताक्षिणी भगः ।

भृगोः श्मश्रूणि रोहन्तु पूष्णो दन्ताश्च पूर्ववत् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

जीवतात्—जी उठे; यजमानः—यज्ञकर्ता (दक्ष); अयम्—यह; प्रपद्येत—उसे वापस मिल जाय; अक्षिणी—नेत्र; भगः—भगदेव; भृगोः—भृगु मुनि की; श्मश्रूणि—मूँछें; रोहन्तु—पुनः उग आएं; पूष्णः—पूषादेव के; दन्ताः—दन्त पंक्ति; च—तथा; पूर्व-वत्—पहले की तरह ।

हे भगवान्, आपकी कृपा से यज्ञ के कर्ता (राजा दक्ष) को पुनः जीवन दान मिले, भग को उसके नेत्र मिल जायँ, भृगु को उसकी मूँछें तथा पूषा को उसके दाँत मिल जाएँ।

देवानां भग्नगात्राणामृत्विजां चायुधाश्मभिः ।

भवतानुगृहीतानामाशु मन्योऽस्त्वनातुरम् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

देवानाम्—देवताओं के; भग्न-गात्राणाम्—क्षत-विक्षत अंग वाले; ऋत्विजाम्—पुरोहितों के; च—तथा; आयुध-अश्मभिः—हथियारों तथा पत्थरों से; भवता—आपके द्वारा; अनुगृहीतानाम्—कृपापात्र; आशु—शीघ्र; मन्यो—हे शिव (कुब्ज रूप में); अस्तु—हो; अनातुरम्—घावों का भरना ।

हे शिव, जिन देवताओं तथा पुरोहितों के अंग आपके सैनिकों द्वारा क्षत-विक्षत हो चुके हैं, वे आपकी कृपा से तुरन्त ठीक हो जाँय ।

एष ते रुद्र भागोऽस्तु यदुच्छिष्टोऽध्वरस्य वै ।

यज्ञस्ते रुद्र भागेन कल्पतामद्य यज्ञहन् ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

एषः—यह; ते—तुम्हारा; रुद्र—हे शिव; भागः—भाग; अस्तु—हो; यत्—जो भी; उच्छिष्टः—बचा हुआ, शेष; अध्वरस्य—यज्ञ का; वै—निस्सन्देह; यज्ञः—यज्ञ; ते—तुम्हारा; रुद्र—हे रुद्र; भागेन—भाग से; कल्पताम्—पूर्ण हो; अद्य—आज; यज्ञ-हन्—यज्ञ के विध्वंसक!.

हे यज्ञविध्वंसक, आप अपना यज्ञ-भाग ग्रहण करें और कृपापूर्वक यज्ञ को पूरा होने दें।

तात्पर्य : यज्ञ भगवान् को प्रसन्न करने के लिए सम्पन्न किया गया उत्सव है। श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध के द्वितीय अध्याय में उल्लेख है कि प्रत्येक व्यक्ति को यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि श्रीभगवान् उसके कार्य से प्रसन्न हैं या नहीं। अर्थात् हमारे कर्मों का उद्देश्य भगवान् को प्रसन्न करना होना चाहिए। जिस प्रकार कार्यालय में कार्यकर्ताओं का यह कर्तव्य है कि वे इस बात को ध्यान में रखें कि मालिक या स्वामी प्रसन्न हुआ है या नहीं, उसी प्रकार हम सबका यह कर्तव्य है कि हम यह देखें कि भगवान् हमारे कार्यों से प्रसन्न तो हैं। परमेश्वर को प्रसन्न करने वाले कर्मों का आदेश

वैदिक साहित्य में है और ऐसे कर्मों का सम्पन्न होना यज्ञ कहलाता है। दूसरे शब्दों में, परमेश्वर के हित में कर्म करना यज्ञ कहलाता है। मनुष्य को यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि यज्ञ के अतिरिक्त जो भी कर्म किया जाता है, वह भवबन्धन का कारण होता है। इसकी व्याख्या *भगवद्गीता* (३.९) में की गई है— *यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः*। कर्म-बन्धन का अर्थ है कि यदि हम भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के लिए कार्य नहीं करते तो हमारे कार्य का फल हमें बाँध लेगा। मनुष्य को चाहिए कि अपनी इन्द्रियतुष्टि के लिए कार्य न करे। हर एक को ईश्वर की तुष्टि के लिए कार्य करना चाहिए। यही यज्ञ कहलाता है।

दक्ष द्वारा यज्ञ की समाप्ति पर सभी देवता प्रसाद की आशा कर रहे थे। भगवान् शिव भी एक देवता हैं, अतः उनको भी यज्ञ का प्रसाद मिलना चाहिए था। किन्तु दक्ष ने द्वेष-वश न तो शिव को यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया और न यज्ञ के बाद उनका भाग उन्हें दिया। किन्तु शिव के अनुचरों द्वारा यज्ञस्थल का विध्वंस हो जाने पर ब्रह्मा ने शिव को शान्त किया और उनका प्रसाद भाग दिलाने का आश्वासन दिया। इस तरह उनके अनुचरों ने जो भी तहस-नहस किया था, उसे ठीक करने के लिए उनसे प्रार्थना की गई।

भगवद्गीता में (३.११) कहा गया है कि जब कोई यज्ञ करता है, तो सभी देवता तुष्ट हो जाते हैं। चूँकि देवता यज्ञ का प्रसाद चाहते हैं, अतः यज्ञ अवश्य किया जाना चाहिए। जो इन्द्रिय-सुख तथा भौतिक कार्यों में लिप्त रहते हैं, उन्हें यज्ञ अवश्य करना चाहिए, अन्यथा वे दण्डित होंगे। इस प्रकार प्रजापति दक्ष जब यज्ञ कर रहा था, तो शिव को अपना भाग मिलने की आशा थी। किन्तु चूँकि शिव आमंत्रित नहीं किये गये, अतः उत्पात हुआ। किन्तु ब्रह्मा के मध्यस्थ बनने से सब कुछ ठीक हो गया।

यज्ञ को सम्पन्न करना अत्यन्त कठिन कार्य है, क्योंकि समस्त देवताओं को यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित करना होता है। इस कलियुग में न तो इतने खर्चीले यज्ञ कर पाना सम्भव है और न देवताओं को इसमें भाग लेने के लिए आमंत्रित कर पाना सम्भव है। अतः इस युग में *यज्ञैः संकीर्तन-प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः* (भागवत ११.५.३२) संकीर्तन-यज्ञ की संस्तुति की जाती है। जो बुद्धिमान हैं उन्हें समझना चाहिए कि कलियुग में वैदिक यज्ञ कर पाना सम्भव नहीं। किन्तु जब तक देवताओं को

प्रसन्न नहीं कर लिया जाता, तब तक नियमित ऋतु-कार्य, यथा वर्षा, नहीं होती। प्रत्येक वस्तु देवताओं द्वारा नियंत्रित है। ऐसी अवस्था में, इस युग में सामाजिक शान्ति तथा सम्पन्नता बनाये रखने के लिए बुद्धिमान व्यक्तियों को *संकीर्तन-यज्ञ* करना चाहिए, जिसमें हरे-कृष्ण मंत्र का कीर्तन हो। मनुष्य को चाहिए कि लोगों को बुलाकर हरे कृष्ण का कीर्तन करे और प्रसाद बाँटे। इस यज्ञ से समस्त देवता प्रसन्न होंगे और संसार में शान्ति तथा सम्पन्नता आएगी। वैदिक अनुष्ठानों के करने में दूसरी कठिनाई यह है कि हजारों देवताओं में से यदि एक भी देवता अप्रसन्न रह जाता है, जैसाकि दक्ष से शिव अप्रसन्न हो गए, तो संकट उत्पन्न हो जाता है। किन्तु इस युग में यज्ञ करना सरल बन चुका है। हरे-कृष्ण कीर्तन करके तथा कृष्ण को प्रसन्न करके मनुष्य समस्त देवताओं को स्वतः प्रसन्न कर सकता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध के अन्तर्गत “ब्रह्मा द्वारा शिव को मनाना” नामक छोटे अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।